अराजक उल्लास : एक विवेचन

मुझे आज भी याद है, 11 फरवरी, 2018 का वो दिन जब कृष्णबिहारी मिश्रजी को भारतीय भाषा परिषद में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, दिल्ली की ओर से सम्मानित किया गया था। अपराह्न भोजन के समय जब वे धीरे-धीरे मंच से उतरकर दरवाजे की ओर जा रहे थे, तो मैंने उन्हें प्रणाम किया और तभी उन्होंने मुझे एक बार देखा। उनकी दृष्टि में थकान के बावजूद भी एक दीप्ति थी जिसने मुझे एक तरह से आकर्षित किया और उनसे मिलने की, उनसे बात करने की एक तीव्र इच्छा मेरे भीतर उमड़ती-घुमड़ती रही। कितनी बड़ी विडंबना है कि एक ही शहर में रहते हुए भी कृष्णबिहारीजी से मिलने का कभी मौका नहीं मिला। अंततः वो सुयोग भी मिल गया जब हिंदी के वरिष्ठ आलोचक डॉ. विजय बहादुरजी के साथ मैं बेलियाघाटा के उस घर पर गई जो इस ऋषि-पुरुष का निवास स्थल है। बातचीत के बीच ही मिश्रजी कभी-कभी मुझे अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहे थे और जलपान के बाद उन्होंने मुझसे पूछा था कि "मैं इसी

जीर्ण-शीर्ण घर में रहता हूँ, कई लोग इस घर के बारे में कई बातें करते हैं। कहते हैं कि नर्क से होकर यहां तक पहुंचना पड़ता है। तुम्हें भी तो उसी नर्क से होकर ही आना पड़ा है, यहां आकर कैसा लगा?" मैंने जवाब में कहा था कि "संकरी गलियों से गुजरकर ही लोग विश्वनाथ के मंदिर तक पहुंचते हैं।" फिर उन्होंने बताया था कि उनके लिए उस घर की क्या अहमियत है। वहां हजारी प्रसाद द्विवेदी, नंददुलारे वाजपेयी प्रभृति हिंदी के प्रतिष्ठित साहित्यकार आकर ठहर चुके हैं। कृष्णबिहारीजी जब अपनी स्मृतियों की गठरी खोलकर उससे कई-कई स्मृतियां निकालकर अपने रससिक्त शब्दों में साझा करते हैं, तो मन सराबोर हो ही जाता है।

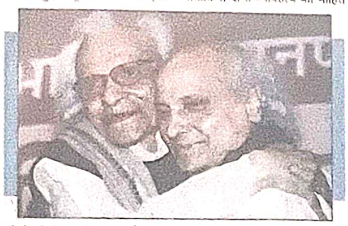

केवल बातचीत में ही नहीं कृष्णबिहारीजी के निबंधों में भी उनके स्मृति-पुंज को बखूबी देखा जा सकता है। उनके निबंध-संग्रह 'अराजक उल्लास' के निबंधों से गुजरते हुए हम उनके कई-कई स्मृतियों से रूबरू होते हैं। वे अपनी अनुभूतियों को ही शब्दबद्ध नहीं करते अपितु सामाजिक विषमताओं को भी प्रस्तुत करते हैं। लेकिन इन सबके बीच कृष्णबिहारीजी में जीवन के प्रति प्रगाढ़ आस्था भी है और यही आस्था हमें आज की विषम परिस्थितियों से लड़ने की एक शक्ति देती है और उस उम्मीद को भी जिन्दा रखती है जिससे एक सुंदर समाज का निर्माण संभव है।

कृष्णबिहारीजी के निबंधों से गुजरना, भारतीय संस्कृति और परंपरा से गुजरना है जिसे आज के समाज ने एक तरह से विस्मृत ही कर दिया है। वास्तव में संस्कृति और परंपरा के मर्म को वही समझ सकता है जो उसे जीता है। कृष्णबिहारीजी ऐसे ही व्यक्तित्व हैं जो आज भी अपनी संस्कृति और परंपरा को जी रहे हैं। उनके तमाम निबंध उनके इसी बोध से ओत-प्रोत हैं।

5 नवंबर को इसी सारस्वत साधक का जन्मदिन है। कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को इनका जन्म हुआ था और शुक्ल षष्ठी को छठी माता का पर्व मनाया जाता है। इस पर्व की महत्ता को रेखांकित करते हुए कृष्णबिहारीजी लिखते हैं- "छठि माता का व्रत सूर्योपासना का व्रत है.......सूर्योपासना का सीधा अर्थ है-हर प्रकार की लघुता से मुक्त होने की सक्रिय आकांक्षा और विराटता से जुड़ने की आकुल अभीप्सा"। आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं कि 'श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम ही भक्ति है', और बिना आस्था भक्ति संभव नहीं। लेकिन आज 'अनास्था-अभिशाप के अशुभ स्पर्श से हमारा उल्लास-छंद लंगड़ा हो गया है'। परंतु मिश्रजी की उम्मीद टूटती नहीं है- "......हम नाना अभावों और क्षुद्रताओं से उबरेंगे और हमारा लंगड़ा उल्लास स्वस्थ होकर सहज नृत्य शुरू करेगा। खाली खोंइछा भरेगा। खोइछे की गमक मरेगी नहीं"।

आज चारों ओर बेहया के जंगल का ही क्रमशः प्रसार हो रहा है। मनुष्य अपनी क्षुद्रता और विवेकहीनता के कारण धीरे-धीरे पतन की ओर अग्रसर हो रहा है। मिश्रजी इसका रास्ता सुझाते हुए लिखते हैं। "हया मनुष्य को उदार, नमनीय और संस्कृत बनाती है..... जरूरी है हया तत्व को जगाना और विरोध की साधना को दीप्त करना ताकि उस भय से हम मुक्त हो सकें जो छोटे-छोटे वर्गों में सिमटने-घुसने के लिए हमें मजबूर करता है।"

'मइयां के जाए न देबो बिदेसवा' निबंध से गुजरते हुए भिखारी ठाकुर का 'बिदेसिया' नाटक याद हो आता है जिसमें पति का जीविकोपार्जन के लिए कलकत्ता जाना, उसकी बेवफाई और स्त्री की वेदना को लेखक ने बखूबी प्रस्तुत किया है। वास्तव में पूर्वांचल क्षेत्रों में 'कमरूकमच्छा' की औरतों को जादूगरनी माना जाता था जो 'जंतर-मंतर की मार से पुरुषों को भेड़ा बना देती थी'। लेकिन कृष्णबिहारीजी तर्क देते हैं- "शक्ति पीठ को अपनी प्रणति निवेदित करने एक बार आचार्य शंकर भी कमच्छा गए थे.....मगर उनके ऊपर किसी का जादू-मंतर नहीं चल सका। आत्म-प्रतीति से दीप्त व्यक्तित्व को मोहित करना खेल नहीं है"।

कृष्णबिहारीजी का देहाती मन इसलिए भी उदास होता है क्योंकि उनका गांव उन्हीं के लिए अपरिचित हो गया है। गांव में पहले की तरह उच्छल-उल्लास नहीं है, वहां तो खामोशी और सूनापन है। स्वकीय बानी-बोली, स्वभाव और संस्कार छूटता जा रहा है, गंवई चाल-चरित्र भी अदृश्य होते जा रहे हैं। मिश्रजी की पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त होती हैं- "गांव से वियुक्त सबके हृदय में क्या गांव-प्रेम जीवित रहता है, शायद नहीं"। तभी तो वे लिखते हैं- "नए-नए मकान जो उठ रहे हैं, उपकरण से प्रीति जिस मात्रा में प्रगाढ़ होती है, संवेदना उसी मात्रा में शिथिल होती है....."

दरअसल लोभ की भावना अति की ओर ले जाती है जिससे मनुष्य अपना सुध-बुध खो बैठता है। वह 'सूप पीटने की भद्दी क्रिया को जीवित रखना चाहता है' लेकिन अपने भीतर की संवेदना को नहीं। तभी तो कृष्णबिहारीजी लिखते हैं- "संवेदना ही मर जाएगी.....तो फिर सूप पीटकर और अनजान बाबा को दीप चढ़ाकर और मुंह में अबीर पोतकर गांव की वास्तविक पहचान को, गांव की स्वकीय शक्ति और गंध को लाख-लाख परिकल्पनाओं का ठाट बांधकर हम जिला नहीं पायेंगे। मगर राजनीति के पंडे-पुरोहित इस बुनियादी प्रश्न की ओर ताकते ही नहीं, और गांव दुर्भाग्यवश उन्हीं की ओर ताक रहा है"। कृष्णबिहारीजी का गांव ही उनका अनुभव-स्थल है। कहा जा सकता है कि उनका व्यक्तिगत जीवन उनके अनुभव-लोक की निर्मिति का आधार है। उन्होंने अपने द्वारा चुने गए अनुभव-संसार को अपने कथ्य का आधार बनाया और उसे अभिव्यक्ति दी। उनके निबंधों की सुंदरता तो वहां है जहां उनका व्यष्टि समष्टि का रूप ले लेती है। यही एक सफल रचनाकार की शक्ति है। जब कोई लेखक आप-बीती घटनाओं को प्रस्तुत करता है तो उसमें आत्मीयता के साथ सच्चाई भी होती है। कप्तान साहब, श्यामवर्णा फुलकेशिया, कोयल को पिंजड़े में बंद करने वाला पड़ोसी, रामनरेशजी, चनमोतिया, मैना, बटो, अंजना – ये सभी जीवंत पात्र हैं, काल्पनिक नहीं। इसके अतिरिक्त उनके निबंधों में उनके परिजनों, सहकर्मियों, मित्रों की उपस्थिति को भी देखा जा सकता है. अपने तमाम स्मृतियों और पात्रों के जरिए एक तरफ जहां उन्होंने समाज की रूढ़ियों की ओर संकेत किया है वहीं दूसरी तरफ आधुनिकता के बढ़ते आसुरी शक्ति और मनुष्य-जाति के क्रमशः पतन को भी सामने रखा है। साथ ही भारतीय परंपरा, संस्कृति, मूल्यों के सजग प्रहरी के रूप में वे तमाम विषमताओं से मुक्ति का मार्ग भी दिखाते हैं। विवेकी राय से शब्द उधार लेते हुए कहूं तो मिश्रजी के निबंधों में कोरी भावुकता नहीं है अपितु तथ्यपरक और वस्तुनिष्ठ विश्लेषण है एवं दो टूक भाषा में वैचारिक विडंबनाओं का विरोध है।

■ श्रीपर्णा तरफदार
सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग, बंगवासी मॉर्निंग कॉलेज